अध्याय ३८

बाबा की हांडी, नानासाहेब द्वारा देव-मूर्त्ति की उपेक्षा, नैवेद्य वितरण, छाँछ का प्रसाद।

गत अध्याय में चावड़ी के समारोह का वर्णन किया गया है। अब इस अध्याय में बाबा की हांडी तथा कुछ अन्य विषयों का वर्णन होगा।

प्रस्तावना

हे सद्गुरु साई! तुम धन्य हो! हम तुम्हें नमन करते हैं। तुमने विश्व को सुख पहुँचाया और भक्तों का कल्याण किया। तुम उदार हृदय हो। जो भक्तगण तुम्हारे अभय चरण-कमलों में अपने को समर्पित कर देते हैं, तुम उनकी सदैव रक्षा एवं उद्धार किया करते हो। भक्तों के कल्याण और परित्राण के निमित्त ही तुम अवतार लेते हो। ब्रह्म के साँचे में शुद्ध आत्मारूपी द्रव्य ढाला गया और उसमें से ढलकर जो मूर्त्ति निकली, वही संतों के संत श्री साईबाबा हैं। साई स्वयं ही ''आत्माराम'' और ''चिर आनन्द धाम'' हैं। इस जीवन के समस्त कार्यों को नश्वर जानकर उन्होंने भक्तों को निष्काम और मुक्त किया।

बाबा की हांडी

मानव धर्म-शास्त्र में भिन्न-भिन्न युगों के लिये भिन्न-भिन्न साधनाओं का उल्लेख किया गया। **सतयुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान का विशेष माहात्म्य है। सर्व प्रकार के दानों में अन्नदान श्रेष्ठ है।** जब मध्याह्न के समय हमें भोजन प्राप्त नहीं होता, तब हम विचलित हो जाते हैं। ऐसी ही स्थिति अन्य प्राणियों की अनुभव कर जो किसी भिक्षुक या भूखे को भोजन देता है, वही श्रेष्ठ दानी है। तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि ''अन्न ही ब्रह्म है और उसी से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है तथा उससे ही वे जीवित

रहते हैं और मृत्यु के उपरांत उसी में लय भी हो जाते हैं।'' जब कोई अतिथि दोपहर के समय अपने घर आता है तो हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उसका अभिनंदन कर उसे भोजन कराएँ। अन्य दान जैसे- धन, भूमि और वस्त्र इत्यादि देने में तो पात्रता का विचार करना पड़ता है, परन्तु अन्न के लिये विशेष सोच विचार की आवश्यकता नहीं है। दोपहर के समय कोई भी अपने द्वार पर आए, उसे शीघ्र भोजन कराना हमारा परम कर्त्तव्य है। प्रथमतः लूले, लंगड़े, अन्धे या रुग्ण भिखारियों को; फिर उन्हें, जो हाथ पैर से स्वस्थ हैं; और उन सभी के बाद अपने संबन्धियों को भोजन कराना चाहिए। अन्य सभी की अपेक्षा पंगुओं को भोजन कराने का महत्त्व अधिक है। अन्नदान के बिना अन्य सब प्रकार के दान वैसे ही अपूर्ण हैं, जैसे कि चन्द्रमा बिना तारे, पदक बिना हार, कलश बिना मन्दिर, कमलरहित तालाब, भक्तिरहित भजन, सिन्दूररहित सुहागिन, मधुर स्वरविहीन गायन, नमक बिना भोजन। जिस प्रकार अन्य भोज्य पदार्थों में दाल उत्तम समझी जाती है, उसी प्रकार समस्त दानों में अन्नदान श्रेष्ठ है। अब देखें कि बाबा किस प्रकार भोजन तैयार कराकर उसका वितरण किया करते थे।

हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि बाबा अल्पाहारी थे और वे थोड़ा बहुत जो कुछ भी खाते थे, वह उन्हें केवल दो गृहों से ही भिक्षा में उपलब्ध हो जाया करता था। परन्तु जब उनके मन में सभी भक्तों को भोजन कराने की इच्छा होती तो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक संपूर्ण व्यवस्था वे स्वयं किया करते थे। वे किसी पर निर्भर नहीं रहते थे और न ही किसी को इस संबंध में कष्ट ही दिया करते थे। प्रथमतः वे स्वयं बाजार जाकर सब वस्तुएँ- अनाज, आटा, नमक, मिर्ची, जीरा, खोपरा और अन्य मसाले आदि वस्तुएँ नगद दाम देकर खरीद लाया करते थे। यहाँ तक कि पीसने का कार्य भी वे स्वयं ही किया करते थे। मस्जिद के आँगन में ही एक भट्टी बनाकर उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित करके हांडी में ठीक नाप से पानी भर देते थे। हांडी दो प्रकार की थी - एक छोटी और दूसरी बड़ी। एक में सौ और दूसरी में पाँच सौ व्यक्तियों का भोजन तैयार हो सकता था। कभी वे मीठे चावल बनाते और कभी मांसमिश्रित चावल (पुलाव) बनाते थे। कभी-कभी दाल

और मुटकुले भी बना लेते थे। पत्थर की सिल पर महीन मसाला पीस कर हंडी में डाल देते थे। भोजन रुचिकर बने, इसका वे भरसक प्रयत्न किया करते थे। ज्वार के आटे को पानी में उबाल कर उसमें छाँछ मिलाकर अंबिल (आमटी) बनाते और भोजन के साथ सब भक्तों को समान मात्रा में बाँट देते थे। भोजन ठीक बन रहा है या नहीं, यह जानने के लिये वे अपनी कफनी की बाँहें ऊपर चढ़ाकर निर्भय हो उबलती हांडी में हाथ डाल देते और उसे चारों ओर घुमाया करते थे। ऐसा करने पर भी उनके हाथ पर न कोई जलन का चिह्न और न चेहरे पर कोई पीड़ा की रेखा प्रतीत होती थी। जब भोजन तैयार हो जाता, तब वे मस्जिद से बर्त्तन मँगाकर मौलवी से फातिहा पढ़ने को कहते थे, फिर वे म्हालसापति तथा तात्या पाटील के प्रसाद का भाग पृथक् रखकर शेष भोजन गरीब और अनाथ लोगों को खिलाकर उन्हें तृप्त करते थे। सचमुच वे लोग धन्य थे। कितने भाग्यशाली थे वे, जिन्हें बाबा के हाथ का बना और परोसा हुआ भोजन खाने को प्राप्त हुआ।

यहाँ कोई यह शंका कर सकता है कि क्या वे शाकाहारी और मांसाहारी भोज्य पदार्थों का प्रसाद सभी को बाँटा करते थे? इसका उत्तर बिल्कुल सीधा और सरल है। जो लोग मांसाहारी थे, उन्हें हांडी में से दिया जाता था तथा शाकाहारियों को उसका स्पर्श तक न होने देते थे। न कभी उन्होंने किसी को मांसाहार का प्रोत्साहन ही दिया और न ही उनकी आंतरिक इच्छा थी कि किसी को इसके सेवन की आदत लग जाए। यह एक अति पुरातन अनुभूत नियम है कि **जब गुरुदेव प्रसाद वितरण कर रहे हों, तभी यदि शिष्य उसके ग्रहण करने में शंकित हो जाए तो उसका अधः पतन हो जाता है।** यह अनुभव करने के लिये कि शिष्यगण इस नियम का किस अंश तक पालन करते हैं, वे कभी-कभी परीक्षा भी ले लिया करते थे। उदाहरणार्थ एक एकादशी के दिन उन्होंने दादा केलकर को कुछ रुपये देकर कुछ मांस खरीद लाने को कहा। दादा केलकर पूरे कर्मकांडी थे और प्रायः सभी नियमों का जीवन में पालन किया करते थे। उनकी यह दृढ़ भावना थी कि द्रव्य, अन्न और वस्त्र इत्यादि गुरु को भेंट करना पर्याप्त नहीं है। केवल उनकी आज्ञा ही शीघ्र कार्यान्वित करने से वे प्रसन्न

हो जाते हैं। यही उनकी दक्षिणा है। दादा शीघ्र कपड़े पहिन कर एक थैला लेकर बाजार जाने के लिये उद्यत हो गए। तब बाबा ने उन्हें लौटा दिया और कहा कि तुम न जाओ, अन्य किसी को भेज दो। दादा ने अपने नौकर पाण्डू को इस कार्य के निमित्त भेजा। उसको जाते देखकर बाबा ने उसे भी वापस बुलाने को कहकर यह कार्यक्रम स्थगित कर दिया।

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर उन्होंने दादा से कहा कि, देखो तो नमकीन पुलाव कैसा पका है? दादा ने यों ही मुँहदेखी कह दिया कि - अच्छा है। तब वे कहने लगे कि तुमने न अपनी आँखों से ही देखा और न जिह्वा से स्वाद लिया, फिर तुमने यह कैसे कह दिया कि उत्तम बना है? थोड़ा ढक्कन हटाकर तो देखो। बाबा ने दादा की बाँह पकड़ी और बलपूर्वक बर्त्तन में डालकर बोले - थोड़ा सा इसमें से निकालो और अपना कट्टरपन छोड़कर चख कर देखो। जब माँ का सच्चा प्रेम बच्चे पर उमड़ आता है, तब माँ उसे चिकोटी भरती है, परन्तु उसका चिल्लाना या रोना देखकर वह उसे अपने हृदय से लगाती है। इसी प्रकार बाबा ने सात्विक मातृप्रेम के वश हो दादा का इस प्रकार हाथ पकड़ा। यथार्थ में कोई भी सन्त या गुरु कभी भी अपने कर्मकांडी शिष्य को वर्जित भोज्य के लिये आग्रह करके अपनी अपकीर्त्ति कराना पसन्द न करेगा।

इस प्रकार यह हांडी का कार्यक्रम सन् १९१० तक चला और फिर स्थगित हो गया। जैसा पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, दासगणु ने अपने कीर्त्तन द्वारा समस्त बम्बई प्रांत में बाबा की अधिक कीर्त्ति फैलाई। फलतः इस प्रान्त से लोगों के झुंड के झुंड शिरडी को आने लगे और थोड़े ही दिनों में शिरडी पवित्र तीर्थ-क्षेत्र बन गया। भक्तगण बाबा को नैवेद्य अर्पित करने के लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ लाते थे, जो इतनी अधिक मात्रा में एकत्र हो जाता था कि फकीरों और भिखारियों को सन्तोषपूर्वक भोजन कराने पर भी बच जाता था। नैवेद्य वितरण करने की विधि का वर्णन करने से पूर्व हम नानासाहेब चाँदोरकर की उस कथा का वर्णन करेंगे, जो स्थानीय देवी-देवताओं और मूर्त्तियों के प्रति बाबा की सम्मान-भावना की द्योतक है।

नानासाहेब द्वारा देव-मूर्त्ति की उपेक्षा

कुछ व्यक्ति अपनी कल्पना के अनुसार बाबा को ब्राह्मण तथा कुछ उन्हें यवन समझा करते थे, परन्तु वास्तव में उनकी कोई जाति न थी। उनकी और ईश्वर की केवल एक जाति थी।[१] कोई भी निश्चयपूर्वक यह नहीं जानता कि वे किस कुल में जन्में और उनके माता-पिता कौन थे। फिर उन्हें हिन्दू या यवन कैसे घोषित किया जा सकता है? यदि वे यवन होते तो मस्जिद में सदैव धूनी और तुलसी वृन्दावन ही क्यों लगाते और शंख, घण्टे तथा अन्य संगीत वाद्य क्यों बजते देते? हिन्दुओं की विविध प्रकार की पूजाओं को क्यों स्वीकार करते? यदि सचमुच यवन होते तो उनके कान क्यों छिदे होते तथा वे हिन्दू मन्दिरों का स्वयं जीर्णोद्धार क्यों करवाते? उन्होंने हिन्दुओं की मूर्त्तियों तथा देवी-देवताओं की जरा सी उपेक्षा भी कभी सहन न की।

एक बार नानासाहेब चाँदोरकर अपने साढू (साली के पति) श्री बिनीवले के साथ शिरडी आए। जब वे मस्जिद में पहुँचे, बाबा वार्तालाप करते हुये अनायास ही क्रोधित होकर कहने लगे कि, ''तुम दीर्घकाल से मेरे सान्निध्य में हो, फिर भी ऐसा आचरण क्यों करते हो?'' नानासाहेब प्रथमतः इन शब्दों का कुछ भी अर्थ न समझ सके। अतः उन्होंने अपना अपराध समझाने की प्रार्थना की। प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा कि, ''तुम कब कोपरगाँव आए और फिर वहाँ से कैसे शिरडी आ पहुँचे?'' तब नानासाहेब को अपनी भूल तुरन्त ही ज्ञात हो गई। उनका यह नियम था कि शिरडी आने से पूर्व वे कोपरगाँव में गोदावरी के तट पर स्थित श्री दत्त का पूजन किया करते थे। परन्तु रिश्तेदार के दत्त-उपासक होने पर भी इस बार विलम्ब होने के भय से उन्होंने उनको भी दत्त मंदिर जाने से हतोत्साहित किया और वे दोनों सीधे शिरडी चले आए थे। अपना दोष स्वीकार कर उन्होंने कहा कि, ''गोदावरी में स्नान करते समय पैर में एक बड़ा काँटा चुभ जाने के

---

१. (क) जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान॥
(ख) जाति पाँति पूछै नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई॥ - तुलसी

कारण अधिक कष्ट हो गया था।'' बाबा ने कहा कि ''यह तो बहुत छोटा सा दंड था'' और उन्हें भविष्य में ऐसे आचरण के लिये सदैव सावधान रहने की चेतावनी दी।

नैवेद्य-वितरण

अब हम नैवेद्य-वितरण का वर्णन करेंगे। आरती समाप्त होने पर बाबा से आशीर्वाद तथा उदी प्राप्त कर जब भक्तगण अपने-अपने घर चले जाते, तब बाबा परदे के भीतर प्रवेश कर निम्बर के सहारे पीठ टेककर भोजन के लिये आसन ग्रहण करते थे। भक्तों की दो पंक्तियाँ उनके समीप बैठा करती थीं। भक्तगण नाना प्रकार के नैवेद्य, पूरी, माण्डे, पेड़ा, बर्फी, बासुंदी उपमा (सांजा) अम्बे मोहर (भात इत्यादि) थाली में सजा-सजा कर लाते और जब तक वे नैवेद्य स्वीकार न कर लेते, तब तक भक्तगण बाहर ही प्रतीक्षा किया करते थे। समस्त नैवेद्य एकत्रित कर दिया जाता, तब वे स्वयं भगवान् को नैवेद्य अर्पण कर स्वयं ग्रहण करते थे। उसमें से कुछ भाग बाहर प्रतीक्षा करने वालों को देकर शेष भीतर बैठे हुए भक्त पा लिया करते थे। जब बाबा सबके मध्य में आ विराजते, तब दोनों पंक्तियों में बैठे हुए भक्त तृप्त होकर भोजन किया करते थे। बाबा प्रायः शामा और निमोणकर से भक्तों को अच्छी तरह भोजन कराने और प्रत्येक की आवश्यकता का सावधानीपूर्वक ध्यान रखने को कहते थे। वे दोनों भी इस कार्य को बड़ी लगन और हर्ष से करते थे। इस प्रकार प्राप्त प्रत्येक ग्रास भक्तों को पोषक और सन्तोषदायक होता था। कितना मधुर, पवित्र, प्रेमरसपूर्ण भोजन था वह? सदा मांगलिक और पवित्र।

छाँछ (मट्ठा) का प्रसाद

इस सत्संग में बैठकर एक दिन जब हेमाडपंत पूर्णतः भोजन कर चुके, तब बाबा ने उन्हें एक प्याला छाँछ पीने को दिया। उसके श्वेत रंग से वे प्रसन्न तो हुए, परन्तु उदर में जरा सी भी गुंजाइश न होने के कारण उन्होंने केवल एक घूँट ही पिया। उनका यह उपेक्षात्मक व्यवहार देखकर बाबा ने कहा कि, ''सब पी जाओ। ऐसा सुअवसर अब कभी न पाओगे।'' तब उन्होंने पूरी छाँछ पी ली, किन्तु उन्हें बाबा

के सांकेतिक वचनों का मर्म शीघ्र ही विदित हो गया, क्योंकि इस घटना के थोड़े दिनों के पश्चात् ही बाबा समाधिस्थ हो गए।

पाठकों! अब हमें अवश्य ही हेमाडपंत के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि उन्होंने तो छाँछ का प्याला पिया, परन्तु वे हमारे लिए यथेष्ट मात्रा में श्री साई-लीला रूपी अमृत दे गए।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥